नागार्जुन की कविताओं में समसामयिक सामाजिक सन्दर्भ

प्रिया सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

नागार्जुन हिन्दी काव्य धारा के उन प्रमुख स्तम्भों में से हैं, जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसको जिया भी है। साहित्यकार सदैव जाने–अनजाने, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपने समाज से जुड़ा अवश्य रहता है। नागार्जुन की कविता हर स्तर पर किसी न किसी सामाजिक संदर्भ से अपनी भागीदारी बराबर बनाए रखती है, उन्होंने भारत के कोने–कोने में घूमते हुए समाज के विविध रूपों को जितनी निकटता से देखा है, बहुत कम लोगों के लिए ही यह सम्भव होता है। सामाजिक जीवन की छोटी से छोटी घटनाएँ उनकी सूक्ष्मदर्शी आँखों से ओझल नहीं हो सकीं और संवेदनशील तथा भाव–प्रवण होने के कारण उनकी कविता में यथार्थ पूरी शिद्दत से रूपायित हुआ। नागार्जुन अपने समय की सभी संमस्याओं से सीधे टकराते हैं वे समस्याएँ चाहे राजनीतिक हो, आर्थिक हो या समाजिक, एक युग की धड़कन उनके साहित्य में है। "कविता में नागार्जुन का दिलचस्पी का दायरा बहुत बड़ा है और बातों को छोड़ भी दे तो भावबोध और मानवीय स्थितियों की जैसी विविधता उनके यहाँ हैं वैसी अन्यत्र नहीं। उनकी कविता एक तरह से अपनी सम्पूर्णता में, विगत 40 वर्षों के भारतीय जीवन के उथल–पुथल की महागाथा है। भावनात्मक साक्ष्य देने की विकलता उन्हें यथार्थ की अनेक दिशाओं में ले जाती है। कभी वे कर्फ्यू के आतंक को देखते हैं, कभी बोलत के टुकड़ों पर उछल रही चाँदनी को, कभी सुदूर नवादा के स्टेशन पर होने वाले रक्तपात को, कभी बस ड्राइवर की स्टेरिंग पर टंगी उन चूड़ियों को जिन्हें उसकी नन्हीं बिटिया ने टांग दिया है।"[1] इस तरह उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यथार्थ से सीधे साक्षात्कार करती हुई जन–जीवन से जुड़ती है। जन से सीधे जुड़ने की जो प्रवृत्ति नागार्जुन में दिखायी देती है, अन्य कवियों में

दुर्लभ है। उनके काव्य में सामाजिक विषमता के स्थान पर एक ऐसे समाज की रचना पर बल दिया गया है जहाँ सबको अपने अधिकार प्राप्त हों तथा शोषणकारी ताकतों को खत्म किया जाये साथ ही समकालीन समस्याओं का यथार्थ चित्रण इनके काव्य में मिलता है।

नागार्जुन सबसे पहले सामान्य जन हैं और बाद में रचनाकार। एकमात्र आदमी की हैसियत से जीवन जीने वाले रचनाकार का दीन–हीन दलित वर्ग के कष्टों, किसान, मजदूरों के संघर्षों और भूखे–प्यासे लोगों की पीड़ाओं को उतनी ही गहरायी से महसूस करना स्वाभाविक है। जब व्यक्तिवादी कवि अपने ही घेरे में बंधे खुद के सुख–दुःख का राग अलाप रहे थे, उससे पूर्व ही उन्होंने सामाजिक संघर्ष की ओर अपनी कविता को तो मोड़ा ही खुद भी उसमें कूद पड़े। नागार्जुन जिस बेहतर समाज का सपना देखते हैं वह कोरा सपना नहीं वरन् छटपटाहट तथा भीतर का दर्द है, वही दर्द जो कबीर एवं निराला का भी था। समाज व जनता से उनका गहरा लगाव तो रहा ही है साथ ही जन–पक्षधरता उनकी कविता का कसौटी है। इस जन पक्षधरता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को नागार्जुन इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

"प्रतिबद्ध हूँ
सम्बद्ध हूँ
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ–
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त सुकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ.....
अविवेकी भीड़ की भेड़िया–धसान के खिलाफ.....
अंध–बधिर व्यक्तियों को सही राज बतलाने के लिए.....
अपने आपको भी 'ब्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर.....
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ।"[2]

जनता के पक्ष में कविताएँ लिखने वाले और भी हैं, पर जनता को अपने में आत्मसात कर कविता लिखने वाले वे अपने ढंग के अकेले कवि हैं। जनता के जीवन में हर दिर घटने वाला यथार्थ है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनता गाँवों में रहती हैं। गरीबी, सामंतों–साहूकारों के

शोषण तथा गरीबी से उत्पन्न विविध कठिनाइयों से जूझते हुए भी भारतीय किसान व खेतीहर मजदूर अपने चेहरे की मुस्कान को अक्षुण्ण बनाए रखता है। इन किसानों की आर्थिक दुर्दशा से दुःखी कवि को यह कटु सामाजिक सत्य बराबर उद्वेलित करता रहता है कि संविधान द्वारा प्रदत्त वाणी–विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आर्थिक विवशताओं के कारण लोगों के भीतर ही कैद होकर रह गई है। गाँव के भूमिहीन किसानों के आर्थिक दोहन और शोषण के साथ–साथ उनकी बहू–बेटियों के शीलहरण और उनके विरोध करने पर नक्सलवादी होने का आरोप लगाकर उन्हें जेल भिजवाना जैसे दृश्य गाँव की यथार्थ कथा है। 'इनकी कब होगी दीवाली' कविता में नागार्जुन इस यथार्थ को उजागर करते हैं–

'सातों के सातों चमार थे
अति दरिद्र थे भूमिहीन थे
करते थे मेहनत मजदूरी
मालिक लोगों के अधीन थे
भूमिहरण बर्दाश्त कर गए
चुप्पी साधी मार–पीट पर
गुस्सा तब भड़का, बहुओं की
इज्जत जब लूटी घसीट कर।'

नागार्जुन ने गरीबों एवं निम्न मध्यवर्ग के संघर्ष को अपनी कविता में मुख्य स्थान दिया है। 'देखना ओ गंगा मइया', 'खुरदुरे पैर', 'नाकहीन मुखड़ा' आदि इनकी ऐसी कविताएँ हैं जो इस अभावग्रस्त निम्न वर्ग के यथार्थ को सामने लाती हैं। 'देखना ओ गंगा मइया' कविता में कवि ने मल्लाहों के अभावग्रस्त, वस्त्रहीन बच्चों को ऐसा सजीव चित्र खींचा है जो बेचारे पुल से गुजरती ट्रेन तथा यात्रियों के द्वारा गंगा में विसर्जित पैसे को चातक के समान देखते रहते हैं–

'फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों के नंग–धड़ंग छोकरे

दो–दो पैर
हाथ दो–दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा–अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि?'[3]

इसी प्रकार निम्न मध्यवर्गीय भारतीय समाज की स्थितियों को 'मैया' कविता में जो संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है वह अभावों में पलते हुए बच्चों की नियति का ही अंकन है। वे बच्चे जो भविष्य में पढ़–लिखकर कुछ भी बन सकते थे, अपनी स्थिति को बेहतर बना सकते थे, परन्तु गरीबी के कारण वे अपनी नियति नहीं बदल सकते। नागार्जुन अपनी 'घर से बाहर कैसे निकले लाजवंती' शीर्षक कविता में आम आदमी के कटु सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं जहाँ आजादी की रजत–जयंती मनाई जा रही है ओर नारी के तन को पूरे कपड़े भी नहीं हैं जिससे वह अपनी लाज बचा सके। कवि ने इसे मंहगाई की रजत जयंती कहा है–

'नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ–बाट की रजत जयंती।
शर्म न आती, मना रहे हैं वे मंहगाई की रजत जयंती।।'

धन के अभाव में जहाँ सवर्ण अपनी बिरादरी में सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकता तो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे शोषण के शिकार हरिजन और आदिवासियों के दिल पर क्या बीतती होगी? नागार्जुन ने इसे किसी पुस्तक में सामाजिक समस्या के रूप में नहीं पढ़ा वरन् अपने जीवन की पाठशाला में अपने साथियों के साथ दो–चार होते हुए देखा है। ग्रामीण परिवेश में पले नागार्जुन ने स्वयं के परिवार में अर्थाभाव को देखा, उससे उत्पन्न पीड़ा को भोगा है इसलिए वह जनसाधारण के दुःख–दर्द को भली–भाँति अभिव्यक्त कर पाये हैं–

'पैदा हुआ था मैं–
दीन–हीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव को आसव ठेठ बचपन से.....
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।।.....'[4]

इस गरीबी, इस बेकारी से नागार्जुन बुरी तरह त्रस्त हैं। वे चाहते हैं सबको रोजगार के समान अवसर मिलें, सबकी गरीबी दूर हो तथा इसका समाधान वे औद्योगीकरण में खोजते हैं। कवि नवयुवकों से आह्वान करते हैं कि तुम संघर्ष एवं विषमता को सहते हुए आगे बढ़ो तथा इनके हाथों में ऐसी मशाल देते हैं जो निर्बल घट–घट को आलोकित कर दें–

'आओ, आगे आओ,
अपना दाय भाग लो
अपने स्वप्नों को पूरा करने की खातिर
तुम्हें नहीं तो और किसे हम देखें बोलो
लो मशाल, अब घर–घर आलोकित कर दो।'[5]

भारतीय संस्कृति एवं समाज में नारी का सम्माननीय स्थान माना गया है, प्राचीन साहित्य में इसके अनेक उदाहरणों के होते हुए भी वास्तविकता में वह पुरुष की अनुगामिनी तथा उसकी परछाई बन कर रह गयी है। पुरुष प्रधान समाज में नारी आज भी अशिक्षा, अंधविश्वास तथा कुल मर्यादा के नाम पर पिछड़ी हुई, बंधनों में जकड़ी हुई पक्षिणी की भाँति छटपटा रही है। नागार्जुन ने स्त्री की पीड़ा को मिथिलांचल में बहुत निकट से देखा है, उन्हें पौराणिक पात्रों में शबरी, अहल्या, सीता, सूपनखा ओर रेणुका की दुर्दशा, उन पर पुरुष समाज द्वारा ढाए गए जुल्म की याद साथ ही बहुविवाह, सती प्रथा और दहेज की बलि चढ़ती आज के युग की नवयुवतियों की करुण कथा बहुत पीड़ा पहुँचाती है। बहुविवाह प्रथा कानूनी दृष्टिकोण से अपराध होने के बावजूद अनेक स्थानों पर विशेषतः बिहार के मैथिली ब्राह्मण समाज में एक प्रचलित परम्परा के रूप में विद्यमान है। समाज–सुधारकों की दृष्टि भी ब्राह्मण समाज में एक प्रचलित परम्परा के रूप में विद्यमान है। समाज–सुधारकों की दृष्टि भी इन असहाय नारियों के प्रति उपेक्षापूर्ण है। नागार्जुन ने बहुविवाह प्रथा से त्रस्त नारी समाज की इस दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक एवं करुण दृश्य अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में उनकी प्रसिद्ध कविता 'तालाब की मछलियाँ' की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

'दो टूटे दाँतों वाले इन भद्र अधेड़ महानुभाव
(मथुरा पाठक) की
मधुर तृतीया भर्या
प्राणों से भी प्यारी
वह कुलीन मैथिल की कन्या
फिर फिर सुनने लगी वह आवाज.....
हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग वस्तु हैं
जाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं.....'[6]

पुरुष प्रधान समाज द्वारा नारी पर थोपी गई वर्जनाएँ जिन्हें उसने पायल समझकर स्वीकार किया था न जाने कब उसके अज्ञान, भोलेपन और सरलता के कारण बेड़ियाँ बनकर उसकी प्रगति की राह में बाधा बन गयी। भारतीय नारी को इन अस्वाभाविक एवं अमानवीय बन्धनों से मुक्त होने की प्रेरणा देना प्रत्येक प्रबुद्ध भारतीय नागरिक का कर्तव्य है। एक बार यदि उसमें मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न हो जाए तो वह समाज में अपने खोए सम्मान को पुनः प्राप्त करने के लिए जुट जाये। नागार्जुन भारतीय नारी को मछली के प्रतीक रूप में प्रस्तुत कर उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा की पुर्नस्थापना के प्रति आशान्वित करते हैं–

'टूटे रहे हैं अन्तःपुर के ढाँचे
आज या कि कल
तुम भी तो निकलोगी बाहर
हवेलियों से, डेवढ़ियों से
फिर जनपद के खण्ड नरक ये मिट जायेंगे
शब्दकोश को छोड़ कहीं भी
नहीं 'असूर्यम्पश्या' का अस्तित्व रहेगा
'औरतदारी' रह न जायेगी।'

अपने आप को श्रम की भट्टी में झोंककर देश के औद्योगिक विकास को निरन्तर गतिमान बनाए रखने वाले श्रमिक वर्ग के प्रति भी प्रायः समाज उदासीनता का ही परिचय देता है। स्वतंत्रता के पश्चात् यह आशा थी कि श्रमिकों को न्याय मिलेगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, मजदूर संगठनों के होते हुए भी मजदूर आज भी दिगभ्रान्त है। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली जैसे महानगरों के रेलवे स्टेशनों पर बोझा ढोते, फुटपाथ पर लगे खोमचेनुमा ढाबे पर खाना खते, नंगे पांव मजदूरी की राह में दौड़ते इन मजदूरों की दशा आज आजादी के इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी ज्यों की त्यों बनी हुई हे। महानगरों में बहुमंजिला इमारतों पर खतरनाक स्थितियों में ईंट–गारे का काम करते मजदूरों को अक्सर देखा जा सकता है, इनके लिए न तो प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ ही उपलब्ध हैं, न ही कोई जीवन बीमा या भविष्यनिधि जैसी योजना अभी तक साकार हो पाई है। मजदूरी पाने की आशा में बैठे यही मजदूर विभिन्न नगरों के चौराहों पर ऐसे बैठे मिलते हैं, जैसे किसी युग में गुलाम बिकने के लिए बाजारों के चौराहों पर मिला करते थे। यही मजदूर जब सार्वजनिक परिवहन से यात्रा करते हैं तो किराया देने के बावजूद कंडक्टर से लेकर यात्री तक इन्हें हिकारत भरी नजरों से देखते हैं। नागार्जुन ऐसी स्थिति की झलक इस प्रकार देते हैं–

'कुली मजदूर हैं,
बोझा ढोते हैं, खींचते हैं, ठेला.....
आकर ट्राम के अन्दर पिछले डिब्बे में
बैठ गए हैं इधर–उधर तुमसे सटकर
आपस में उनकी बतकही
सच–सच बतालाओ
नागवार तो नहीं लगती है?
जी तो नहीं कुढ़ता है?
घिन तो नहीं आती हैत्र'

नागार्जुन अपनी कविता 'खुरदुरे पैर' में इनका मर्मस्पर्शी चित्र अंकित करते हैं। कवि के इस चित्र से सरकारी नहीं तो कम से कम समाज के

अभिजात्य वर्ग की मानसिकता में कुछ परिवर्तन आए तथा समाज का ध्यान इन असहाय एवं असंगठित मजदूरों की दशा में सुधार पर केन्द्रित हो, यही कवि का लक्ष्य है।

नागार्जुन अपने काव्य में पीढ़ी–दर–पीढ़ी और सामाजिक अत्याचार सहन करने के लिए बाध्य दलित वर्ग के आर्थिक व सामाजिक उन्नयन के लिए आवाज उठाते हैं, इन्होंने दलित एवं आदिवासियों पर सार्थक कविताएँ लिखी हैं, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और आन्ध्रप्रदेश के आदिवासी–जनजातियों के जीवन संघर्षों को गहराई के साथ चित्रित किया है। 'हरिजन गाथा' शीर्षक लम्बी कविता इनकी काव्यात्मक क्षमता तथा जनता की पक्षधर चेतना का ही विकास है। हरिजनों पर होने वाले दारुण अत्याचार की दृष्टि से ही नहीं सामाजिक विकास के अगले चरण की दृष्टि से भी यह कविता महत्वपूर्ण है। आजादी के इतने वर्षों पश्चात् जब संविधान के अनुसार उन्हें आरक्षण व निःशुल्क शिक्षा जैसी सुविधाएँ देने के लिए सरकार ने कुछ सक्रियता दिखायी भी तो समाज का उच्च वर्ग क्षुब्ध होकर इनके नरसंहार जैसे घिनौने कृत्य पर उतर आया। इस घटना का सजीव वर्णन 'हरिजन गाथा' में नागाज्रुन कुछ इस प्रकार करते हैं–

'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं–
तेरह के तेरह अभागे–
अकिंचन मनुपुत्र
जिन्दा झोंक दिए गए हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन–सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ–सौ मनुपुत्रों द्वारा
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था.....'[8]

इसमें पैशाचिक नरमेघ का चित्रण तो है ही साथ ही भविष्य में भारतीय समाज के रूपान्तरण में दलितों की क्रान्तिकारी भूमिका की ओर भी संकेत किया गया है। तीन खण्डों की इस कविता में नवजात का भविष्य संत

गरीबदास बांचते हैं। वे इस नवजात बच्चे की माँ से उसे लेकर भागने की योजना बनाते हैं तथा बच्चे का पालन–पोषण किसी ऐसे स्थान पर करने को कहते हैं जहाँ वह सुरक्षित रह सकें, क्योंकि वह जानते हैं कि यही बालक बड़ा होकर सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत बनेगा–

'दिल ने कहा–अरे यह बालक
निम्न वर्ग का नायक होगा
नई ऋचाओं का निर्माता
नये वेद का गायक होगा।'[9]

भारत की शिक्षा व्यवस्था एवं दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली नागाजुन के समक्ष एक बड़ी समस्या है। शिक्षा का अभाव तथा भारतीय जनमानस पर थोपी गयी विदेशी शिक्षा प्रणाली भारत के पिछड़े होने का मुख्य कारण है। स्वतंत्रता पूर्व जहाँ शिक्षा के अभाव में अधिसंख्य नागरिक स्वतंत्रता के महत्व व अपने अधिकारों से अनभिज्ञ रहे वहीं विविध प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों व सामंती शोषण के कुचक्र में भी फंसते रहे। आज स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति ज्यों की त्यों ही बनी हुई है। जहाँ शिक्षा को सामाजिक जीवन के परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनना था वहाँ राजनीतिज्ञों के कुचक्रों में फंसकर आजादी के बाद भी शिक्षा प्रणाली व शिक्षक उपेक्षणीय रहे। गाँव के सरकारी स्कूलों में प्रायः खस्ताहाल पुरानी इमारतों में स्कूल चलते हैं जिनमें न तो श्यामपट्ट हैं और न ही छात्रों के बैठने के लिए ढंग का स्थान। कहीं–कहीं तो शिक्षक भी नहीं होते। नागार्जुन अपनी कविता 'मास्टर' में इस स्थिति का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं–

'घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम के सांचे।'[10]

यहाँ सिर्फ शिक्षा ही नहीं शिक्षकों की भी स्थिति दयनीय है। नौकरशाही का शिकार असहाय अध्यापक ग्रामीणों की सहानुभूति एवं

सहायता से दिन काटता हुआ तथा गाँव के दबंग दादाओं की धमकियों व दबाव के तहत मानसिक यंत्रणा झेलने को मजबूर होते हैं। कहीं–कहीं तो शिक्षक को कई महीने वेतन ही नहीं मिलता। नागार्जुन अल्प वेतन पर अपने भरे–पूरे परिवार का पालन–पोषण करने में असमर्थ प्राइमरी स्कूल के मास्टर की व्यथाओं को 'प्रेत का बयान' में अभिव्यक्ति देते हैं–

'पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
तनखा थी तीस रुपैया, सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं, दो नहीं, नौ–नौ महीने
घरनी थी, माँ थी, बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर, करुणा के अवतार।'[11]

शिक्षा का अभाव मनुष्य को आगे नहीं बढ़ने देता, उसे अपने नागरिक अधिकारों की जानकारी नहीं मिल पाती जिस कारण वह जाने–अनजाने समाज के सक्षम वर्ग के शोषण का शिकार होता है। नागार्जुन वर्ग–वैषम्य, अन्तर्विरोधों और व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हैं।

इस प्रकार नागार्जुन ने जिन तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को अपनी कविताओं में स्वर दिया है, वे आज भी किसी न किसी रूप में समाज में व्याप्त हैं। इस कारण इनकी कविताएँ वर्तमान समय में भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं, इन्होंने समस्याओं को दूर से देखा ही नहीं बल्कि स्वयं जिया भी है, इसलिए उन पर कबीर की उक्ति 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आखिन की देखी' शब्दशः चरितार्थ होती है। समाज की कोई भी समस्या उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से छिपी नहीं रह सकी। बाजार में बढ़ती हुई मंहगाई हो या काला बाजार की घटना, हर एक विषय पर सामाजिक हित की दृष्टि से कवि ने लेखनी उठाकर अपने दायित्व बोध का परिचय दिया है। बूथ कैप्चर की घटनाएँ हों, भाड़े के गुंडों के आतंक तले घिघियाई बकरी की तरह लाइन में खड़े वोटर आदि के दृश्य नागार्जुन अपनी कविता में समाज की एक–एक घटना को ज्यों का त्यों रूपायित करते हैं। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था एवं

समाजोत्थान से सम्बन्धित कोई विषय नागार्जुन से अछूता नहीं रहा। जाति–पाति, धार्मिक कट्टरता, छुआछूत, वर्ग वैषम्य, आर्थिक तंगी, मंहगाई, घर, गृहणी, ग्रामीण और शहरी जीवन, भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद आदि ऐसे सामाजिक संदर्भ हैं जिन पर इन्होंने छोटी–बड़ी कविता अवश्य लिख है तथा यह सन्दर्भ इनकी प्रासंगिकता वर्तमान समाज में भी बनाए है। समाज के हर कोने को झांकने और आंकने की अद्भुत क्षमता नागार्जुन में है।

सदर्भ :

1. केदारनाथ सिंह : आलोचना, अंक 56, पृ0 17
2. शोभाकांत : नागार्जुन रचनावली, भाग–2, पृ0 130
3. वही, भाग–1, पृ0 256
4. वही, भाग–2, पृ0 130
5. वही, भाग–1, पृ0 239
6. नागार्जुन : तालाब की मछलियाँ, पृ0 151
7. नामवर सिंह : नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, पृ0 36
8. वही, पृ0 137
9. वही, पृ0 142
10. वही, पृ0 98
11. वही, पृ0 95